



श्री अमर मारती

बीरायतन की मासिक पत्रिका

सितम्बर-अक्टूबर-2022

वर्ष-65

अंक-9-10

मूल्य: रु० 10/-

कच्छ में बच्चों की प्रसन्नता को
देखकर ताई माँ भी प्रसन्नता से
आशीर्वाद दे रहे हैं।





पूज्य ताई माँ के सान्निध्य में
World Pharmacist Day के उपलक्ष में
 Veerayatan Institute of Pharmacy, Kutch
द्वारा BLOOD DONATION CAMP का आयोजन !
 जन सेवा से इस सुन्दर कार्य में
 सैकड़ों विद्यार्थियों द्वारा blood donation.



श्री अमर भारती

वीरायतन की मासिक पत्रिका सितम्बर-अक्टूबर-2022 वर्ष: 65 अंक: 09-10

उद्बोधन



संस्थापक
उपाध्यायश्री अमरमुनि



दिशा-निर्देश
आचार्यश्री चन्दनाश्रीजी
 • सम्पादक
साध्वीश्री साधनाजी
 • महामंत्री
तनसुखराज डागा

श्री अमर भारती

01

सितम्बर-अक्टूबर- 2022

अन्धकार में भटक रहे जन,
 तुम प्रकाश बन जाओ।
 ठोकर खाते पथ भ्रष्टों को,
 सत्य मार्ग दिखलाओ॥

अत्याचारी दमन चक्र के,
 समुख गिरि-सम अड़े रहो।
 अन्तिम रक्त-बिन्दु तक अपने,
 सत्य पक्ष पर खड़े रहो॥

अन्धकार का काला मुखड़ा,
 कैसे गोरा हो?
 सबकुछ छोड़ो, दीप जलाओ,
 जब भी हो जैसा भी हो॥

—उपाध्याय अमरमुनि

This issue of Shri Amar Bharti can be downloaded from our website- www.veerayatan.org



सम्यक् दर्शन

-उपाध्याय अमरमुनि

जैनदर्शन का मूल है सम्यक् दर्शन-

मूल है तो शाखा है, प्रशाखा है, पत्र है, पुष्प है और फल है। “मूलं नास्ति कुतः शाखा?” मूल के बिना शाखा कहाँ से होगी? भारतीय दर्शन के विराट साहित्य में तर्कशास्त्र का मूल सूत्र है यह। मूल के बिना शाखा की कल्पना करना स्वप्नदर्शन है एक प्रकार का।

सम्यग्दर्शन ने समग्र आत्माओं को एक करने का प्रयत्न किया है। किन्तु उसकी व्याख्या करनेवाले जब आये बाद में तो उन्होंने उसे टुकड़ों में तोड़ दिया। सम्यग्दर्शन का जो मूल भावार्थ था, वह था- आत्मानुभूति, आत्मरुचि, आत्मप्रतीति, आत्मलक्ष्यता, आत्मदृष्टि।

जिस देह में हम रह रहे हैं, उस देह से परे, इन्द्रियों से भी परे और फिर भी उसके कण-कण में, जर्रे-जर्रे में ज्योतिर्मान है आत्मा। कोई कण खाली नहीं है शरीर का जहाँ आत्मा की ज्योति नहीं है। और जब यह शरीर ज्योतिहीन हो जाता है, तब वह शव हो जाता है, मुर्दा हो जाता है। यह तो निश्चित है कि जबतक हम संसार में हैं, तबतक आत्मा देह के बिना कुछ काम नहीं कर सकता, और देह से भिन्न आत्मा एक तिनका भी नहीं उठा सकता।

सम्यग्दर्शन ने कहा यद्यपि हम दोनों साथ हैं, फिर भी हम दो हैं। साथ में रहकर हम साथी भी हैं और एक दूसरे से अलग भी हैं। दोनों का योग है। एकान्तवाद नहीं है कि शरीर को गलने दो, सड़ने दो, मरने दो, उसकी उपेक्षा करो, ऐसा नहीं है। जो हमारे दायित्व हैं, जिन्हें इस विश्वजगत् में साकार करने हैं, उनकी उपेक्षा करना और कहना कि हम तो आत्मा हैं, और बाकी सब व्यर्थ है, यह एकान्तवाद है। अगर ऐसा है कि शरीर की कोई अपेक्षा नहीं है तो आत्मा ही रहना चाहिए केवल एक। लेकिन दोनों का एक योग है। महावीर कहते हैं कि साथ में रहिए, किन्तु एक-दूसरे के अलग अस्तित्व को समझिए। समझनेवाला देह नहीं है। समझनेवाला आत्मा है। समझ आत्मा के पास है। शरीर के पास चैतन्य के आधार के बिना ज्ञान शक्ति नहीं है।

सम्यक् शब्द का अर्थ-

हम सम्यग्दर्शन को सम्यग् शब्द क्यों लगाते हैं? केवल दर्शन शब्द ही क्यों नहीं कहते? भगवान महावीर कहते हैं कि दर्शन तो अनादिकाल से है, वह कोई अब का नहीं है, इस घड़ी का नहीं है। इस दर्शन ने हमें संसार में ही भटकाया है। क्योंकि वह सम्यक् नहीं हो

सका। दर्शन तो हर मत-मतान्तर दर्शन है। हर व्यक्ति के अपने दृष्टिकोण हैं। वह दृष्टिकोण ही दर्शन है उसका। तान्त्रिकों की भी दृष्टि है और जो यज्ञ में बलि दे रहे थे, उनके पास भी दर्शन था। किन्तु वह दर्शन, वह दृष्टि सम्यक् नहीं थी। क्योंकि वह आत्मदृष्टि नहीं थी और वे लोग जो मान रहे थे कि आत्मा है लेकिन आत्मा का जो स्वरूप है वह सम्यक् नहीं था। सम्यक् रूप यह है कि हम देह में रहेंगे, फिर भी देह से परे रहेंगे। आत्मा अलग है, देह अलग है यह दृष्टि है सम्यक्। इस प्रकार एक अद्वैत दर्शन है जो हमारे जीवन का रूप है। सबके साथ रहकर भी सबसे अलग। यह दृष्टिकोण जबतक ठीक से समझ में नहीं आयेगा, तब तक दृष्टि सम्यक् नहीं होगी।

पर में भी आत्मदृष्टि है सम्यग्दृष्टि—

एक महानुभाव वीरायतन आये थे जो स्वयं को सम्यग्दृष्टि समझ रहे थे। वीरायतन में रोगियों की सेवा होती देखकर बोले, बीमार हैं लोग तो वे अपने कर्मों से बीमार हैं, हमें तो अपनी आत्मा से मतलब है। जितना समय सेवा में लगाते हैं, उतना अपने आत्मचिन्तन में लगाना चाहिए। मैंने पूछा, “कभी डॉक्टर के पास गये हो?” तो बोले, ‘हाँ, अच्छे डॉक्टर के पास गया हूँ। बड़े हॉस्पीटल में चिकित्सा करवाई है मैंने।’

रोग के पीछे छुपा एक और रोग—

आत्मा और शरीर भिन्न है, ठीक बात

है, फिर भी सम्यग्दृष्टि भी शरीर की चिकित्सा कराने चिकित्सक के पास जाते हैं। वस्तुतः सम्यग्दर्शन का यह अर्थ नहीं कि देह की उपेक्षा करनी है। देह के साथ सम्बन्ध है उसकी उपेक्षा नहीं करनी है। देह के साथ सम्बन्ध है माता, पिता, पुत्र आदि का, उनकी उपेक्षा करना सम्यग्दर्शन नहीं है। आत्मदर्शन अगर तुमने किया तो क्या केवल तुम्हारे ही शरीर में आत्मा है? क्या दूसरे शरीर में आत्मा नहीं है? प्रश्न है कि जब तुमने समझा कि शरीर अलग है, आत्मा अलग है तो फिर चिकित्सा के लिए इतनी भाग-दौड़ क्यों? जब शरीर की सेवा संसार का काम है तो क्यों जाते हो डॉक्टर के पास?

हर रोग तो एक रोग है ही लेकिन उस रोग के पीछे एक और रोग छुपा है। एक तो रोग है जो देह में परिलक्षित होता है, जिसे डॉक्टर देखते हैं। लेकिन उस रोग के पीछे एक और भी रोग है जिसे ज्ञानी अपने ज्ञान में देखते हैं वह है आर्तध्यान। रोग के पीछे रोग है आर्तध्यान। बार-बार विकल्प आते हैं, उद्वेग होता है, बार-बार आर्तध्यान होता है, उसका निवारण करना है। शरीर तो माध्यम है लेकिन उस शरीर के रोग के पीछे जो मन की बिमारी का रोग है आर्तध्यान, उसके निवारण का ध्यान होना चाहिए।

भगवान् महावीर और औषधि—

भगवान् महावीर की बात एक

विलक्षण बात है। उन्हें कोई आर्तध्यान नहीं है, फिर भी उन्होंने रोग का निवारण किया है। स्वयं को अपेक्षा नहीं थी, फिर भी उन्होंने रोग निवारण के लिए औषधि का सेवन किया है।

जब गोशालक के द्वारा भगवान् महावीर पर तेजोलेश्या का प्रहार हुआ और यह हवा फैली कि उनकी मृत्यु आ गयी है। सिंह अनगार वन में साधना कर रहे थे। साधना करते-करते प्रभु का ध्यान आ जाता है, और बैठे-बैठे रोने लगते हैं। भगवान् महावीर अपने ज्ञान में देखते हैं कि सिंह अनगार विलाप कर रहे हैं तो बुलाते हैं उसे, कहते हैं— वत्स! रोते क्यों हो?

ज्ञान तो उसको भी दिया था कि शरीर अलग है, आत्मा अलग है। आत्मा अजर, अमर अविनाशी है। देह तो क्षणभंगुर है, हर क्षण मर रहा है। एक व्यवहार मृत्यु होती है और एक निश्चय मृत्यु। क्षण-क्षण मृत्यु याने निश्चय मृत्यु। भगवती सूत्र में कहा है— क्षण-क्षण आयुकर्म के पुद्गल क्षीण हो रहे हैं। हर सांस जो आ रही है और जा रही है वह निश्चय मरण है। जन्म लेने के साथ गर्भ में ही मरना शुरू हो जाता है। हर गुजरता क्षण मरण है। यह बोध तो महावीर ने दिया था सिंह अनगार को। फिर भी महावीर तो महावीर है। उनकी पीड़ा, उनका रोग शरीर तक ही है। आर्तध्यान जो हमें होता है, वह रोग उन्हें नहीं था। और कहना चाहिए कि उस आर्तध्यान के रोग के पीछे एक और

भी रोग है। उस रोग का नाम है रौद्रध्यान। कैसे होता है वह? व्यक्ति जब बीमार हो जाता है, पीड़ा से व्याकुल होता है। चिन्ता होती है कि मेरा क्या होगा? उस आर्तध्यान में किसी ने समय पर सेवा का कार्य नहीं किया, प्यास लगी, समय पर पानी नहीं दिया तो आर्तध्यान रौद्रध्यान बन जाता है कि मैं मर रहा हूँ, किसी को कोई चिन्ता ही नहीं। उस वक्त उसे भयंकर क्रोध आता है। और वह जो दुर्भाव आता है, उससे रोग के पीछे एक रोग और पैदा हो जाता है, वह है रौद्रध्यान।

अन्तर्जगत में नाटक नहीं होता—

हम तो पहले ही आर्तध्यान में पड़े हैं, लेकिन महापुरुष की बात अपने पर लेकर दावेदार बन जाते हैं कि हम सम्यग्दृष्टि हैं। भिखारी भी नाटक में राजा का रूप लेकर सिंहासन पर बैठ सकता है। लेकिन वस्तुतः जो वीतराग अवस्था में पहुँचे हुए हैं वे प्रभु महावीर उन्होंने सिंह अनगार को कहा, “वत्स! रेवती श्राविका के यहाँ एक औषधि बनी है, वह ले आओ। समय आ गया है, इस रोग की निवृत्ति का।” निमित्त मिल जाए तो रोग दूर हो जाए। शिष्य तो और भी थे लेकिन सिंह अनगार कहते हैं, “मैं ही जाऊंगा। प्रभु का यह कार्य अपने आर्तध्यान को दूर करने के लिए नहीं है क्योंकि उन्हें आर्तध्यान है ही नहीं। उनका कार्य दूसरों के आर्तध्यान को दूर करने के लिए है। हजारों साधु थे जिन्हें पीड़ा थी, केवल सिंह अनगार

को ही पीड़ा थी, ऐसी बात नहीं थी। पीड़ा उनकी भी थी सिंह अनगर के माध्यम से। आर्तध्यान से सर्वथा मुक्त उस वीतराग परमात्मा ने जिन्हें आर्तध्यान, रौद्रध्यान तो है ही नहीं, धर्मध्यान भी नहीं है। वे तो परम शुक्लध्यान में विराजमान हैं। ऐसे महापुरुष भी दूसरों के आर्तध्यान को दूर करने के लिए औषधि ग्रहण करते हैं। यह है दृष्टि सम्यग्दर्शन की।

देह की संभाल आर्तध्यान की निवृत्ति हेतु-

हमें तो केवल कहने के लिए ही आत्मदर्शन है। ऐसे तो देह दर्शन ही है। अगर भूख लगी है, भूख से पीड़ा हो रही है, तो केवल भूख ही भूख नहीं है। भूख के कारण आर्तध्यान भी है। उसे दूर करना है यह तत्त्वदृष्टि है और यह तत्त्वदृष्टि ही सम्यग्दर्शन है। माध्यम तो देह है, लेकिन कार्य आत्मा में जो आर्तध्यान आ रहा है उसे दूर करना है। भाव में जो आर्तध्यान आ रहा है उस भाव में से आर्तध्यान को दूर करना सम्यग्दर्शन है।

देह में रहते हुए, देह की संभाल करते हुए, देह की चिकित्सा करते हुए भी ज्ञानी की दृष्टि कुछ और है तथा अज्ञानी की दृष्टि कुछ और है। अज्ञानी देह तक सीमित है लेकिन ज्ञानी देह के माध्यम से चिकित्सा तो करता है किन्तु उसका दृष्टिकोण अन्दर के आर्तध्यान का निवारण करने का है। जो रोग के पीछे एक

और रोग हो रहा है, उसका निवारण करना, यह हेतु है उसके पीछे। सम्यग्दर्शन केवल अपने ही अन्दर में आत्मा के दर्शन करना नहीं है। आत्मा है हमारे शरीर में यह तो हर किसी धर्म-परम्परा में मान्य है। कौन कहता है कि आत्मा नहीं है नास्तिकों को छोड़कर? मुसलमान भी कहते हैं, इस शरीर में 'रूह' है। इसाई 'सोल' कहता है, वेदान्त 'ब्रह्म' कहता है।

आत्मा की बात सभी धर्मदर्शन करते हैं। उन्हें पता है कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। यह भेद विज्ञान हर दर्शन में है। अब रहे अच्छे बुरे कर्म। जिसके लिए वे यह भी कहते हैं कि जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल पाओगे। कर्म सिद्धान्त भी उन्हें किसी न किसी अंश में स्वीकार है। लेकिन ये सब केवल दर्शन हैं। सम्यग्दर्शन तो कुछ और है।

सम्यक् शब्द जो जोड़ा है, व्यर्थ नहीं जोड़ा है। अपनी ही आत्मा में आत्मभाव समझना आत्मदृष्टि नहीं है। लेकिन दूसरी आत्मा में भी आत्मतत्व को समझना सम्यक् दृष्टि है। जैसे मुझे पीड़ा होती है, ऐसी ही पीड़ा उसको भी होती है, ऐसी समझ, सम्यग्दृष्टि है। कहने को तो कह रहा है कि उसमें रुह (आत्मा) है फिर उसे काट-काट कर खा जाना कैसे संभव है? सिर्फ कहने से क्या मतलब हुआ? महावीर की वाणी है "एगे आया" हर आत्मा का एक ही रूप है। किसी

आत्मा पर आवरण कम है तो किसी आत्मा पर ज्यादा है। किसी पर अज्ञान की छाया ज्यादा आ गई है तो किसी पर कम है। जब तुम्हारी भावधारा ऊँचाई पर जायेगी, उस समय अज्ञान की यह छाया बिल्कुल समाप्त हो जायेगी और यही आत्मा परमात्मा के स्वरूप में प्रकट होगी। 'अप्पा सो परमप्पा।' अशुद्ध आत्मा, आत्मा है। और शुद्ध आत्मा परमात्मा है। सम्यग्दर्शन हमें वीतराग भाव की तरफ यात्रा कराता है। पहले दर्शन, दृष्टि सम्यक् होती है तब ज्ञान सम्यक् होता है।

प्रभु की बात नहीं कर सकते, मंगलपाठ नहीं सुना सकते। **जहाँ आग्रह वहाँ वीतराग भाव नहीं—** सम्यग्दर्शन और मताग्रही सम्प्रदाय दोनों कभी एक जगह नहीं रहे। न कभी रह सकते हैं। या तो सम्प्रदायवादी होता है व्यक्ति या सम्यग्दर्शनी होता है। राम की भी पूजा करे और रावण की भी पूजा करें ऐसा कैसे होगा? हमें बहुत स्पष्ट होना होगा। जहाँ-जहाँ ये मताग्रही हैं, वहाँ विकास नहीं हो सकता।

कहते हैं गुरुजी को केवलज्ञान हो गया। महावीर की वाणी से तो न हुआ। जब इहलोक से सिधार गये तो कहते हैं सीमंधर स्वामी के पास गये और वहाँ कैवल्य पा लिया। जहाँ आग्रह होता है, ऐसे मिथ्या विकल्प खड़े होते हैं और लोगों को भ्रम के चक्कर में डाला जाता है। फिर वह आग्रह अत्याग्रह का रूप ले लेता है और वही कदाग्रह एवं दुराग्रह बन जाता है जिसकी धारा संसार की तरफ बढ़ती जाती है और संसार बढ़ता है, घटता नहीं।

भगवान की भक्ति करें, यह ठीक है। जो मान्य हैं उनका सम्मान करें, यह ठीक है। लेकिन आग्रह रखना कि सारा सत्य इसी में है, गलत बात है। भगवान महावीर ने गौतम को भक्ति न करने को नहीं कहा। उन्होंने कहा कि गौतम! तुम्हें मुक्ति इसलिए नहीं होती कि तेरा मेरे प्रति आग्रह है। जहाँ आग्रह है वहाँ वीतरागभाव नहीं है। सत्य से इन्कार नहीं है,

भक्ति से इन्कार नहीं है किन्तु आग्रह से इन्कार है। दोनों में अन्तर है। जिस दिन यह आग्रह छूट जायेगा, उसी दिन तुझे केवलज्ञान हो जायेगा। इसलिए कहा-

“जीवादि सद्वर्णं सम्पत्तरुवमप्णणो तंतु”
आत्मभाव का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। व्यक्ति और सम्प्रदाय का श्रद्धान नहीं। अपना स्वरूप जो है, वह है सम्यगदर्शन। आत्मा अरूप है। इसलिए छद्मस्थ को सम्यगदर्शन का जो बोध है, वह भी अरूप है, अनुभूति में है केवल।

सम्यक्त्व देने लेने की चीज नहीं—

लोग कहते हैं, इसको सम्यक्त्व हो गया, उसे सम्यक्त्व हो गया। कुछ लोग सम्यक्त्व का बाजार लगाते हैं, बांटते हैं। सम्यक्त्व दी भी जा रही है, और ली भी जा रही है। वस्तुतः स्थूल वस्तुओं की तरह सम्यक्त्व देने-लेने की चीज नहीं है। सम्यगदर्शन तो अन्तरात्मा से प्रज्वलित ज्योति का नाम है। वह ज्योति अरूप है। उस अरूप का साक्षात्कार तो अरूप केवलज्ञान ही कर सकता है। जहाँ अज्ञान का एक अंश भी नहीं है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्याय ज्ञान की गति ही नहीं है। अतः यह कहना कि साक्षात् सम्यगदर्शन हुआ, आत्मसाक्षात्कार

Someone asked "What is forgiveness?" A little boy gave a lovely reply, it is the wonderful FRUIT that a tree gives, when it is being hurt by a STONE.



हुआ, गलत है। शास्त्र के माध्यम से चिन्तन मनन से परोक्ष दर्शन हो सकता है। आत्मा का दर्शन तो केवलज्ञान के बिना हो नहीं सकता साक्षात् रूप से।

इसलिए धीरे-धीरे कदम बढ़ाते जाईये और जो-जो भूमिका है हमारी उसका आदर करते जाएँ। जहाँ-जहाँ ठोकर लगी हो, भूल हुई हो उसे स्वीकारते जाएँ और आगे बढ़ते जाएँ। यह यात्रा है, धर्मयात्रा। हम सब यात्री हैं। कोई दो कदम आगे हैं तो कोई दो कदम पीछे। लेकिन हम मंजिल पर पहुँच गये हैं, यह दावा करना गलत है। और यह दावा कोई स्वीकार करता है तो वह भी अज्ञानी है।

**न संस्तरो भद्र समाधि साधनं,
न लोक पूजा न च संघमेलनं।
यतस्ततोध्यात्मरतो भवानीशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्य वासनाम्॥**

बाहर के विकारों से जब मुक्त होंगे, तभी मुक्त होंगे। वे विकार अलग हैं, मैं अलग हूँ। विकारों को विकार समझ लेना, क्रोध को, माया, लोभ और वासना को विकार समझ लेना तथा इन विकारों से अलग मेरा स्वरूप चिदानन्द है, यह दृष्टि प्राप्त कर लेना। इस दृष्टि का नाम है सम्यगदर्शन।



व्रत देते हैं सुखी जीवन का मार्ग

(पंचयाम भाग-1)

-आचार्य चन्दना

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँचों व्रतों का पालन अर्थात् सुखमय जीवन। अतः महत्वपूर्ण है ये व्रत। इनमें मुख्य है पहला एवं पांचवा। क्योंकि हिंसा का कारण है द्वेष और परिग्रह का मूल है राग। ये ही राग और द्वेष हैं दुःख। इन्हीं राग-द्वेष के कारण जीव दुःख पाता है और भव-भ्रमण करता है। अगर दुःख से मुक्त होना है तो राग-द्वेष से मुक्त होना होगा।

द्वेष एक प्रकार की अग्नि है। जैसे अग्नि सर्वभक्षी है- जो आ जाय उसे भस्म कर देती है। नहीं देखती कि अच्छा है या बुरा। लकड़ी आ जाय, चन्दन की लकड़ी आ जाय, शास्त्र आ जाय जो भी उसकी चपेट में आता है उसे वह नष्ट कर देती है। उसी तरह द्वेष की अग्नि में सरलता, कोमलता, दया जो भी हो सब भस्म हो जाते हैं। द्वेष स्वयं व्यक्ति को भी जलाकर भस्म कर देता है। अतः द्वेष को पहले

साफ करना जरूरी है। जब बड़ी सफाई हो जाती है तो फिर महीन सफाई आसान हो जाती है। अतः अहिंसा व्रत प्रथम स्थान पर है क्योंकि पहले हिंसा, क्रूरता, निर्दयता दूर करना आवश्यक है। निर्दयता ही दूसरों पर बधन डालती है। दूसरे जीवों की स्वतन्त्रता छीनती है। दूसरे के प्रति जब द्वेषभाव होता है तो व्यक्ति खुद जलने लगता है। उसके अपने पाप के उदय से द्वेष पैदा होता है। द्वेष एकान्ततः पाप है।

वस्तु या व्यक्ति के प्रति रागभाव होता है तो यह भी कर्मबन्ध में निमित्त है लेकिन अनुकूलता की प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है मैत्रीभाव, सहयोग का भाव पुण्य का हेतु है।

अतः पहले पाप का त्याग आवश्यक है। द्वेष का त्याग जब हो जाता है तो उस व्यक्ति की कोई वस्तु दूसरा व्यक्ति ले भी तो उसे द्वेष बुद्धि नहीं आयेगी। वह सोचेगा- ठीक है इतने दिन वह वस्तु मेरे पास थी, अब उसे जरूरत है

तो उसके पास रहेगी। राग इतना खतरनाक नहीं है। द्वेष हट जाता है तब राग अपने आप सुगन्ध देना शुरू कर देता है। तब व्यक्ति वस्तु का उपयोग करता है। उपयोग करना व्रतों की सीमा में है लेकिन उपभोग करना अतिचार है। उपयोग करने में व्यक्ति ट्रस्टी बनता है, परिग्रही नहीं। उपभोग करने में व्यक्ति मूर्छित बनता है, परिग्रही बनता है, आसक्त होता है। उपयोग का अर्थ है कीचड़ भी मिल जाय तो उसमें कमल पैदा करने की क्षमता। किन्तु परिग्रही व्यक्ति को कीचड़ मिले तो वह कीचड़ में डूब जाता है दुःखी होता है।

प्रश्न है परिग्रह क्या है?

परिग्रह को जानने के लिए हमें संसार की संरचना को जानना होगा। हमारे पास पांच उपकरण हैं संसार को जानने के लिए- कान, नाक, आंख, जीभ और त्वचा। अतः हम शब्द, रूप, रस, गन्ध, एवं स्पर्शात्मक संसार के स्वरूप को जानते हैं। जो रूपान्तरण, स्थानांतरण की विभिन्न प्रक्रिया में से गुजरता रहता है और रूपी है। किन्तु इसके अतिरिक्त जो अदृश्य संसार है उसका भी अस्तित्व है। जो मन से और चिन्तन से जाना जाता है। अतः संसार का दो तरह से विभाजन किया है छह द्रव्य और नौ तत्त्व।

हिंसा के त्याग के लिए तो स्पष्ट है- सम्पूर्ण सूक्ष्म एवं स्थूल जीवसृष्टि के प्रति आत्मतुल्य भाव ही अहिंसा है। लेकिन परिग्रह

के त्याग के लिए सारे द्रव्य, सारे तत्त्व, सारे पदार्थों के त्याग की बात नहीं की है। गृहस्थ जब परिग्रह परिमाण व्रत लेता है तब वह गिनती की ही कुछ चीजों की सीमा बांधता है। वस्तुतः इसमें बड़ी वैज्ञानिकता है। व्यक्ति को धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय की या आकाश की क्या पकड़ हो सकती है? व्यक्ति मोक्ष की क्या मर्यादा करेगा?

हम इस विराट दुनिया में अपने आपको समेट लेना चाहते हैं। कैसे समेटेंगे? न नवतत्वों को समेट सकेंगे, न छह द्रव्यों को समेट सकेंगे। शब्द, रूप, रस, गन्ध स्पर्श क्या इनकी भी मर्यादा हो सकेगी? किस तरह से आप रूप की मर्यादा करेंगे? कैसे शब्द की मर्यादा करेंगे? हर रूप जो सामने आयेगा आंखों में झलकेगा ही आकाश में बादल गरजते हैं, पक्षी चहचहाते हैं, प्लेन की, गाड़ियों की और अनेक तरह की ध्वनियाँ कानों से टकराती हैं। अतः इन्द्रियों का परिमाण नहीं है।

अर्थात् सारी दुनिया का नहीं किन्तु हमारे आस-पास की दुनिया का जो सम्बन्ध है, उनमें हम अपने आप को समेट सकते हैं। अतः परिग्रह व्रत को नौ भागों में बांटा है- धन, धान्य, क्षेत्र, वस्तु, रूप्य, सुवर्ण, कुप्य (फूटकर चीजें) द्विपद, चतुष्पद। व्यक्ति को ज्यादा आकर्षण धन का होता है और जरूरत भोजन की होती है। अतः धन-धान्य पहले रखा है। फिर वह सोना, चांदी, जवाहरात में ललचाता

है। अतः उसका परिमाण रखा, घर-खेती भी उसकी आवश्यकता है। तदनन्तर है- द्विपद चतुष्पद। पशु उसके खेती में जरूरी होते हैं। तथा दास-दासी उस समय की सामाजिक आवश्यकता थी। युद्ध होते थे, एक राजा दूसरे राजा पर आक्रमण कर देता था। जो शक्तिशाली जीत जाता तो पराजित राज्य की सम्पत्ति को लुटकर वहाँ की जनता को भी पकड़कर बाजारों में बेचा जाता था। जिन्हें समृद्ध लोग खरीद कर दास-दासी के रूप में आश्रय देते थे। अर्थात् जिन चीजों पर अधिकार किया जा सकता है, उनकी मर्यादा की जाती है। इस प्रकार बड़ी वैज्ञानिकता है इस व्रत में।

परिमाण का अर्थ है सीमा में बांधना। व्यक्ति अगर मर्यादा बांध लेता है तो उसे असन्तोष नहीं होता अन्यथा जो उसके पास है उसका सुख नहीं ले पाता, बल्कि दूसरों के पास जो है उसे प्राप्त करने की लालसा बनी रहती है। तथा दूसरों के पास है उसका दुःख

उसे ज्यादा महसूस होता है। अगर वह सीमा बांध ले कि मुझे नहीं चाहिए। तब उसे दुःख नहीं छू सकता। जिन चीजों के पीछे व्यक्ति दौड़ता रहता है, उनका परिमाण किया गया है। सीमा बांधने से व्यक्ति लालसा की, इच्छा की आग से बच सकता है। क्योंकि इच्छा अनन्त है, बेलगाम है। वस्तुतः परिग्रह संख्या में नहीं है। परिग्रह आसक्ति में है। मूर्छा है परिग्रह। आवश्यक को परिग्रह नहीं कहा है। क्योंकि व्यक्ति न दस बार का भोजन एकबार में खा सकता है और न दस ड्रेस एकसाथ पहन सकता है। आवश्यकता बहुत थोड़ी है। लालसा है असीम। लालसा का, ममत्व का त्याग ही है वस्तुतः अपरिग्रह।

परिग्रह परिमाण व्रत जीवन की पराकाष्ठा के सुख का उपाय है। संसार का त्याग एक अलग वस्तु है। इसी प्रकार संसार का भोग भी अलग है किन्तु संसार की वस्तु का सही तरीके से उपयोग एक साधना है। यह एक तरह से सुखी जीवन जीने का उपाय है।

(पंचयाम भाग-2)

चार व्रत व्यवस्था है, अपरिग्रह आस्था है

जब मैं पांच व्रतों पर विचार करती हूँ तो मुझे लगता है अहिंसा हमारा स्वभाव है, सत्य नैसर्गिक है और आचौर्य हमारी प्रकृति है। ये तीनों अहिंसा, सत्य और अस्त्वेय परिस्थिति की उपज है। ये हमारी आन्तरिक प्रवृत्तियाँ नहीं हैं।

जहाँ तक ब्रह्मचर्य का प्रश्न है, वह शरीर से सम्बन्धित है, शरीर की आवश्यकता है, मनुष्य की स्वाभाविकता है। उसके लिए कोई बहुत बड़ी साधना नहीं किन्तु जैसे कि भोजन में नियन्त्रण अथवा नियमिता अपेक्षित है उसी तरह नियन्त्रण जरूरी है। इसके लिए

व्यवहार में शालीनता और स्व नियन्त्रण आवश्यक है। भावों की शुद्धता आवश्यक है, यह सब सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत आ जाता है।

जो विकृति है वह है अहंकार और आसक्ति। परिग्रह क्या है? परिग्रह है लोभवृत्ति मुझे यह चाहिए, मुझे वह चाहिए, मुझे और चाहिए। जहाँ तक आवश्यकता है वह अलग है। किन्तु आसक्ति पर नियन्त्रण बड़ी कठिन साधना है। बाकी चार-हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म को आसानी से दूर किया जा सकता है। हिंसा, झूठ, चोरी हमारा स्वभाव नहीं है न हमारी आवश्यकता है अतः इन पर नियन्त्रण आसान है।

कठिन साधना तो है- अपरिग्रही होना। नाम चाहिए, पद चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए, मेरा धन, मेरी श्रेष्ठता, हर जगह मेरेपन की पकड़ यह भीतर की गंदगी है।

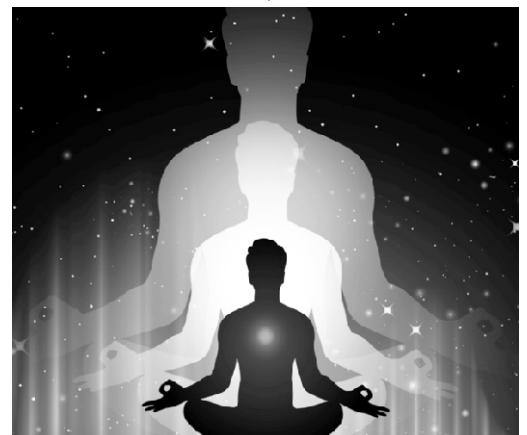
साधना के पथ पर हिंसादि तो प्राथमिक अवस्था में ही समाप्त हो जाते हैं। लेकिन लोभ साधना की बाहरी सीढ़ी, गुणस्थानों के क्रम में चढ़ते हुए क्षीणमोह तक पीछा नहीं छोड़ता। ठीक ही कहा गया है- “पाना नहीं, जीवन को बदलना है साधना”

लोभ से, लालच से, आसक्ति से निकलकर ही सच्चे अर्थ में जीवन को साधा जा सकता है। साधक तो वही है जो अनासक्त भाव में रहता है।

कुछ लोग मानते हैं कि अहिंसा बहुत कठिन है। किन्तु मेरे विचार से अहिंसा एक जीवन पद्धति है, शेष व्रत जीवन की व्यवस्था है। बचपन में सीखा दिया कि मांसाहार नहीं करना, कत्तलखाना नहीं चलाना, झूठ नहीं बोलना आदि। तो यह सदाचार जीवन की पद्धति बन जाती है, संस्कार सुदृढ़ हो जाते हैं। किन्तु मैं और मेरेपन का भाव निकालने की पद्धति नहीं बन सकती। अतः अहिंसा से कठोर साधना अपरिग्रह की है।

अगर कोई गूँगा है तो क्या वह सत्यव्रती है? तोता चोरी नहीं करता तो क्या वह व्रती है? वनस्पती झगड़ा नहीं करती तो क्या वह व्रती है?

पाप की जड़ तो मेरेपन की भावना है। ममत्व ही है पाप का घर। शेष चार व्रत व्यवस्था के अन्तर्गत आ सकते हैं परन्तु अपरिग्रह का भाव भीतरी अवस्था है। अतः मेरा मानना है कि चार व्रत व्यवस्था है और अपरिग्रह व्रत आस्था है, साधना है।



धर्म समन्वय की मूल दृष्टि

-उपाध्याय अमरमुनि

जो ऊपर उठाये रखे वह धर्म-

धर्म की परिभाषा के सन्दर्भ में एक प्राचीन उक्ति है- धारणाद् धर्मित्याहु, यस्मात् धार्यते प्रजाः। अर्थात् जो धारण करता है वह धर्म। जो आत्मा को गिरते हुए बचाकर ऊर्ध्व मुखी बना दे वह धर्म है। आचार्य हरिभद्रसूरी ने कहा है- ‘दुर्गतौ प्रपन्तन्तमात्मानं धारयतीति धर्मः’ धारण करने का अर्थ है- उसके मूल स्वरूप को यथावत् रखना।

क्रियाकाण्ड सम्प्रदाय है-

हर पदार्थ में चाहे चल हो या अचल, सचेतन हो या अचेतन कुछ न कुछ मूलतत्त्व अवश्य होता है जिससे उसका अस्तित्व बना रहता है। वस्तु का स्वरूप नष्ट होता है किन्तु उसकी सत्ता नष्ट नहीं होती।

यहाँ हम आत्मधर्म की बात कह रहे थे। आजकल धर्म का अर्थ सम्प्रदाय, मत या पन्थ किया जाता है। प्रत्येक सम्प्रदाय का कोई न कोई क्रियाकाण्ड होता है। पूजा और उपासना की पद्धति होती है। कर्तव्य अकर्तव्य के नाम पर कुछ विधि- निषेध होते हैं, साधारण जनता उसी को धर्म कहती है। परन्तु धर्म की यह व्याख्या नहीं है। यह तो धर्म का



औपचारिक रूप है, मौलिक रूप नहीं। क्रियाकाण्ड और मान्यताएँ धर्म का शाश्वत रूप नहीं हैं। मान्यताएँ बदलती रहती हैं। क्रियाकाण्ड का रूप भी देश-काल और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। वह धर्म का शरीर है, आत्मा नहीं। आत्मतत्त्व मिटा नहीं, वह अविनाशी होता है, शाश्वत होता है।

क्रिया अथवा परम्परा आत्मा का शरीर रूप बाहर का आधार है वह हमेशा बदलता रहता है। जन्म लेता है और मरता है। जैसे शरीर मरणधर्म है इसलिए हर क्षण बदलता रहता है।

और जन्म-मरण करता रहता है।

धर्म का एक अन्तरंग रूप है जो धर्म की आत्मा है और धर्म का दूसरा रूप क्रियाकाण्ड है। बाह्याचार के रूप में जो विधिनिषेध है वह धर्म का शरीर है। जिसे हम सम्प्रदाय, मत या पंथ कहते हैं। धर्म का जो मौलिक तत्त्व है वह उसकी आत्मा है और वस्तुतः वही यथार्थ धर्म है। वह आत्मस्वरूप धर्म कभी बदलता नहीं, क्योंकि वह शाश्वत होता है, सर्वव्यापी होता है। वह किसी एक देश और काल विशेष तक सीमित नहीं रहता।

सीमा क्षुद्र की होती है, महान की नहीं। अगर कोई सीमा दिखाई देती हो तो वह वास्तविक नहीं है क्योंकि सीमा का कारण हमारी दृष्टि की भिन्नता है। आज के प्रचलित सीमाबद्ध धर्मों या सम्प्रदायों को कभी तटस्थ दृष्टि से देखा जाय तो समझ में आयेगा कि सभी धर्म परम्पराओं में एक ही तत्त्व प्राणों की तरह काम कर रहा है। जो शाश्वत है, सदा एक सा है और वही वस्तुतः धर्म है।

ब्रत ग्रह है, विधिनिषेध उपग्रह है-

प्रश्न है कि वह शाश्वत धर्म आखिर है क्या? इसके उत्तर में अगर कहा जाय कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ही धर्म है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि धर्माचरण सम्बन्धी जो-जो अन्य नियम है, विधिनिषेध हैं वे सब इन्हीं को मूलकेन्द्र मानकर प्रचलित होते हैं। अहिंसादि ग्रह है और

सारे क्रियाकाण्ड रूप विधिनिषेध उपग्रह है। उपग्रह ग्रह के चारों ओर घुमने के अतिरिक्त उनका पृथक् कोई अस्तित्व नहीं होता। किन्तु पाँच सिद्धान्तों के प्राणतत्त्व से शून्य सर्वथा विपरीत दिशा में गति करनेवाले धर्म या नियमोपनियम जो हैं, क्रियाकाण्ड हैं, वे अयथार्थ हैं। चेतना से शून्य मृत शरीर है और मृत शरीर केवल सड़ने के लिए होता है, उसकी अंतिम परिणति दूसरी नहीं होती।

जब धर्म की परिभाषा मूल सिद्धान्त से बाहर स्थूल व्यवहार में होती है तब वह देश और काल की मर्यादा से सम्बन्धित होती है। तब सम्प्रदायों और पंथों का जन्म होता है। सम्प्रदायों की मान्यता तबतक सत्य तथा निर्माणकारी होती है, जबतक उसका उद्देश्य धर्म के आत्मस्वरूप मौलिक सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करना होता है। परन्तु जब वह धर्म के नामपर विभिन्न निर्जीव रूद्धियों को जन्म देने लगता है तब उसका अंतिम परिणाम हितकारी नहीं होता क्योंकि वे रूद्धियाँ इतनी बलवान बन जाती हैं कि धर्म के मौलिक स्वरूप को ऐसे ढंक देती हैं जैसे सूर्य को काले बादल ढंक देते हैं। और रूद्धियाँ मार्ग बनाकर चल पड़ती हैं फिर जैसे बादल आपस में टकराते हैं, रूद्धियाँ भी परस्पर टकराती हैं। फिर सूर्य के बादलों से ढंक जाने पर जैसी दशा पृथकी की होती है- प्रकाश लुप्त हो जाता है, अंधेरा छा जाता है। उसी प्रकार धर्म के

यथार्थ स्वरूप के छुप जाने से समाज की होती है। और यह दुःस्थिति किसी एक समाज के लिए नहीं सम्पूर्ण विश्व के लिए घातक हो जाती है। धर्म के नाम पर अतीत में जो हजारों-लाखों मनुष्यों का रक्त बहा है, वर्तमान में भी बह रहा है वह सब सम्प्रदायों की प्राणहीन जड़ रूद्धियों के दुराग्रह का परिणाम है।

कालानुरूप नियम-

अब प्रश्न है कि यह रूद्धिग्रस्तता दूर करने का सार्थक उपाय क्या है? वस्तुतः रूद्धि पैदा होने के दो कारण हैं- अंधविश्वास और अपनी परम्परा की मान्यता को ही पूर्णसत्य तथा सर्वमान्य समझना।

प्राचीनकाल में अपने समयविशेष की अपेक्षा को लक्ष्यकर धर्माचार्यों ने जो नियम बनाये वे उस समय के लिए उपयोगी थे। सम्भव है उनमें से कोई अभी भी उपयोगी हो। परन्तु सभी नियम आज भी उसी प्रकार उपयोगी मानना तो भ्रान्ति होगी। कुछ समय के बाद कुछ नियम अनुपयोगी बन जाते हैं। एक प्रकार से मर जाते हैं, उन मृत नियमों को पकड़ रखना गलत है। लाश अन्त में आग में जलाने या धरती में दफनाने के लिए होती है। शिर पर उठाने के लिए नहीं। इसलिए जो पूर्व प्रतिपादित नियम अभी भी कुछ अंश में उपयोगी हो तो उसे देश, काल के अनुसार संशोधित करके नये रूप में प्रचलित करने

चाहिए और जिन विधिनिषेधों का वर्तमान से कोई मेल न रहा हो अर्थात् जिसका प्राप्त देशकाल से योग्य सम्बन्ध न होता हो और जो परिष्कार योग्य भी न रहा हो उसे साहस के साथ समाप्त कर देना चाहिए। धर्म देशकाल से परे होता है। तथा साम्प्रदायिक नियम देश, काल, परिस्थिति के आधार पर होते हैं।

सर्दी के गरम वस्त्र गरमी के तपते, जलते दिनों में लादे रखना कोई बुद्धिमत्ता नहीं होती। एक समय की उपयोगिता दूसरे समय में अनुपयोगिता में बदल जाती है। अनुपयोगी होने पर भी उसे उपयोगी समझना, छोड़ने का समय आ गया हो तब भी न छोड़ना, चिपके रहना ही अन्धविश्वास है।

एक समय तक संतरे, नारियल आदि फलों पर उनकी छाल आवश्यक होती है कि वह फल के अन्दर के रसभाग की रक्षा करती है। लेकिन जब फल खाने होते हैं तब छाल उतार कर फेंक दी जाती है, उसे संभालकर नहीं रखते। साम्प्रदायिक नियम भी छाल की



तरह होते हैं। उनकी कभी आवश्यकता होती है परन्तु वह उपयोगिता बाहर तक ही होती है। आन्तरिक जीवन की शुद्धि के लिए तो धर्म का रसभाग ही उपयोगी है। छाल को सर्वस्व मान लेना, सांप्रदायिक नियमों को सर्वस्व मान लेना यह अंध मोह है। साधक को इसे छोड़ना होगा।

तीर्थकर महावीर ने कहा है— धर्मपुस्तकों के ज्ञान को समाप्त किये बिना केवलज्ञान नहीं होता और बाह्याचार को समाप्त किये बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

एकान्त में सत्य नहीं होता—

दूसरी बात यह है कि अपनी मान्यता को ही पूर्ण सत्य तथा सर्वमान्य समझना यह तो दुराग्रह है। ऐसा एकान्त आग्रह न व्यक्ति के लिए हितावह होता है न समाज के लिए। ऐसे दुराग्रह को दूर करने के लिए प्रभु महावीर ने अनेकान्त सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

‘सत्य अनन्त है, सत्य की कोई सीमा नहीं है। सत्य के आंशिक बोध को पूर्ण सत्य मानना वस्तुतः असत्य ही है। हम साधारण व्यक्ति अपूर्ण है, हमारा परिबोध भी अपूर्ण है। क्षुद्र से क्षुद्र वस्तु के भी अनन्त विधायक एवं निषेधात्मक गुणधर्म होते हैं। जिन्हें जान लेना सामान्य व्यक्ति के लिए असम्भव है। और सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अपने अनन्त ज्ञान में सत्य को प्रतिभाषित तो करते हैं किन्तु प्रतिपादित नहीं कर सकते। प्रतिपादन का आधार तो शब्द हैं वे सीमित हैं अतः उनमें असीम सत्य को

अभिव्यक्त करने की शक्ति कहाँ है और न भविष्य में भी कभी कहा जा सकता है। सत्य का पूर्णरूप अनन्त केवलज्ञानी का विषय तो है लेकिन शब्दविशेष का विषय नहीं है। हम शब्द के माध्यम से पूर्णबोध की जो बात करते हैं वह मात्र उपचार कथन है, वास्तविक नहीं।

मैं दिन में बैठकर लिख रहा हूँ और कोई आकर मुझे पूछे कि अभी वर्तमान क्षणों में दिन ही है न? अब बताओ कि मैं क्या उत्तर दूँ? वर्तमान क्षण में भारतीय क्षेत्र में दिन है तो अमेरिका आदि अन्य क्षेत्रों में रात भी है। अतः सत्य की सुरक्षा के लिए मुझे कहना होगा कि वर्तमान क्षणों में रात भी है और दिन भी है। भारत की दृष्टि से दिन है, यह देशिक सत्य है, सार्वदेशिक नहीं है। यह एक उदाहरण है सत्य के अर्थबोध का जिसे सारी मान्यताओं पर न्यूनाधिक रूप से लागु करना है।

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा धर्म परम्पराओं का जो एकान्त रूप से पूर्णसत्य होने का दुराग्रह है, जिसके कारण सर्वत्र घृणा, द्वेष, कलह और हिंसा व्याप्त हो गयी है उसे अनेकान्त दृष्टि ही दूर कर सकती है और परस्पर सद्भावना और सहयोग की मंगल भावना का निर्माण कर सकती है। जिसकी आज सर्वाधिक जरूरत है। आज ही नहीं मानवजाति के मंगल और कल्याण के लिए हमेशा अपेक्षित है।



जैन टॉक 150

रमेश थाह फाउंडर ऑफ जैना फाउंडेशन

यह जैन फाउंडेशन का सौभाग्य है कि आज के 150वीं श्रृंखला में पद्मश्री से सम्मानित जैनाचार्य डॉ. श्री चन्दनाश्रीजी हमारे साथ मौजूद हैं, यह हमारे लिए बहुत ही गर्व का विषय है। आज की दुनिया में आप सब जानते हैं कि हम इंसानियत के बुनियादी तथ्यों को ही भूल चुके हैं क्योंकि करुणा, दया और प्रेम आज बहुत कम देखने को मिलता है।

आचार्यश्री चन्दनाश्रीजी एक वह विलक्षण साध्वी हैं जिन्होंने तीर्थकर महावीर द्वारा प्रसुप्ति करुणा, दया और प्रेम को अपनी सेवा द्वारा खूब निखारा है, वे दूसरों की आंखों में आंसू नहीं देख सकते। जिस प्रकार वे कार्य कर रहे हैं और उनका एक सेन्टर

पालीताणा में भी चल रहा है जो कि तीर्थकर महावीर विद्यालय एवं आदिनाथ नेत्रालय के साथ पुजारियों और जिज्ञासुओं के शिक्षण के लिए भी है। अगर ऐसे ही कार्य हमारे सारे पूजनीय जैनाचार्यश्रीजी भी अलग-अलग राज्यों में करें तो इससे देश की छवि और देश का भाग्य बदल सकता है।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं आचार्यश्रीजी का जैन फाउंडेशन में स्वागत करता हूँ और उनका आभार व्यक्त करता हूँ कि वे यहाँ पधारे हैं।

श्रद्धेय आचार्यश्री तार्ड महाराज

मेरे आत्म प्रिय अनेक देशों के श्रोतागण, मैं आप सबको देख करके अत्यंत प्रसन्न हूँ। तीर्थकर महावीर के सिद्धांतों के विषय में आप सब से चर्चा करना चाहूँगी। यह विषय हमारे लिए कोई नया नहीं है।

उत्तरी अमेरिका के Jaina Felicitation Event में पद्मश्री आचार्य चन्दनाश्रीजी ने अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह को जीवन में उतारने का जो सरल मार्ग बताया, वह

अमर भारती के पाठकों हेतु प्रस्तुत है।

बचपन से ही हम अहिंसा की बात सुनते रहे हैं, अपरिग्रह की बात सुनते रहे हैं, अनेकान्तवाद की बात सुनते रहे हैं। ये शब्द हमारी जिन्दगी के आसपास बचपन से ही घुले मिले हैं, लेकिन इन शब्दों के साथ-साथ उनकी एक प्रक्रिया है, सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारने का एक मार्ग है, एक उपाय है। इस विषय में मैं आपसे थोड़ी-सी चर्चा करना चाहूँगी।

अहिंसा-

अहिंसा साधना का प्रारंभिक रूप है जिसमें बताया जाता है हिंसा मत करो, किसी को दुःख मत दो, किसी को तकलीफ मत दो।

यह इसका प्रारंभिक चरण है और यह आवश्यक है। साधना की प्रारंभिक अवस्था की यहीं से शुरुआत होती है कि हमारे मन से, हमारे बोलने से, हमारे भाव से किसी को भी तकलीफ ना हो। हमारे जीवन की किसी भी क्रिया से किसी को भी तकलीफ ना हो यह अहिंसा का प्रारंभिक रूप है।

दूसरा चरण है अनुकंपा। अनुकंपा का अर्थ है ऐसा चिन्तन कि जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने जीवन में सुख की बात सोचता है कि मुझे किसी चीज से खुशी मिलती है उसी प्रकार दूसरे को भी उस चीज से खुशी मिलती है, मुझे जिस चीज से अगर दुःख होता है तो दूसरे को भी उस चीज से दुःख मिलता

है। मुझे कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना है जिससे सामने वाले को दुःख हो। जैसा मैं अपने जीवन में अपने लिए चाहता हूँ वैसा ही मुझे दूसरों के जीवन के लिए भी सोचना और करना चाहिए।

तीसरा चरण है जिसके विषय में भगवान महावीर ने अपने अंतिम समय में एक अद्भुत संदेश दिया है। उन्होंने किसी बड़ी कठोर तपस्या या साधना की बात नहीं की। उन्होंने कहा कि तुम्हारा सर्वप्रथम कर्तव्य है कि तुम सम्पूर्ण विश्व के साथ मैत्री करो, सम्पूर्ण विश्व के साथ प्रेम करो। तुम संसार के जिन साधनों का उपयोग करते हो उनके प्रति तुम भी उपयोगी बन जाओ। अनुकंपा से रहो और विश्व के साथ मैत्री करो।

महत्वपूर्ण है उनकी यह बात कि किसी भी जाति का भेद किए बिना सम्पूर्ण विश्व के साथ मैत्री का विस्तार करो— यह उनका एक महत्वपूर्ण संदेश है। मैं सोचती हूँ सारी दुनिया को अगर आज किसी भी संदेश की जरूरत है तो वह है विश्व मैत्री का संदेश। इसी से अनगिनत घृणा, द्वेष, नफरत आदि के दुःखों से निवारण मिल सकता है। ये सारे दुःख एक उसी छोटे से संदेश से दूर हो सकते हैं।

स्विट्जरलैंड, जिसने दुनिया में कभी भी किसी से युद्ध नहीं किया और इसी कारण वह सम्पन्न है, समृद्ध है, सुन्दर है। वहाँ किसी भी प्रकार की कोई अशांति नहीं है, तो जिस प्रकार स्विट्जरलैंड युद्ध रहित एक देश हो सकता है क्या उसी प्रकार से भारत नहीं हो सकता सारी दुनिया नहीं हो सकती?

दुनिया का कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जो अहिंसा में विश्वास नहीं रखता हो। यह हो सकता है कि उनकी परिभाषा अलग हो, उनका सोचने का तरीका अलग हो लेकिन यह अहिंसा सबको मान्य है।

सम्पूर्ण दुनिया में अगर जैन समाज मैत्री का संदेश पहुँचा सके तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी और मनुष्य के लिए ही नहीं सम्पूर्ण सृष्टि के लिए बड़ी खुशी की बात हो सकती है। अनावश्यक दुःख और पीड़ा संसार में से खत्म हो सकती है।

भगवान महावीर ने ना व्यवसाय करने के लिए के लिए मना किया, ना खेती करने के लिए



मना किया, ना पशुपालन करने के लिए मना किया। क्योंकि एकेन्द्रिय (सूक्ष्मजीव) की हिंसा से बचा नहीं जा सकता। एकेन्द्रिय की अहिंसा हमारे व्यवहार में नहीं हो सकती लेकिन भावों में हो सकती है। व्यवहार में ठीक है एकेन्द्रिय जीव की हिंसा से कोई भी नहीं बच सकता। गृहस्थ की बात तो ठीक है साधु भी एकेन्द्रिय की हिंसा से नहीं बच सकता। उठना-बैठना, खाना-पीना किसी ना किसी प्रकार से एक इंद्रिय की हिंसा होती ही है, लेकिन इस बात पर भी भगवान् महावीर ने कहा कि अनावश्यक हिंसा से बचो चाहे वह वाणी से हो, चाहे वह भाव से हो, चाहे वह व्यवहार से हो इन सब से आप खुद को बचा सकते हो।

अगर हम इसे समझ ले तो हमारे जीवन के बहुत सारे प्रश्नों का समाधान हो सकता है। इतिहास की अनगिनत घटनाओं के चित्र है हमारे सामने। अनगिनत लोगों ने जब कभी आवश्यकता पड़ी है उन्होंने मानव जाति को तकलीफों से, प्राकृतिक उपद्रवों से बचाया है। जैन आचार्यों ने जैन श्रावकों ने आगे आकर मदद की है, लोगों को बचाने की कोशिश की है। चाहे भौतिक आपदाएँ हो, प्राकृतिक आपदाएँ हो, राजनीतिक संकट हो उसको आगे आकर संभाला है। अहिंसा का स्वरूप मैत्री में है। जब आप किसी के दुःख में सहभागी बनकर उसके दुःख को मिटाने में मदद करते



हैं तो आप उसके मित्र बनते हो। ऐसे सिर्फ निठल्ले बैठे रहने से आप कभी भी मित्र नहीं बन पाएंगे।

मैंने पूरी कोशिश की है कि इस अहिंसा को लोग समझे और उसी का परिणाम यह हुआ कि आज वीरायतन के माध्यम से कई क्षेत्रों में लोगों के संस्कार परिवर्तन का काम, सेवा का काम और शिक्षा का काम हुआ है।

अहिंसा के बाद दूसरी चीज है अपरिग्रह

हम कितनी भी कोशिश करें पर हम सम्पूर्ण रूप से अपरिग्रही नहीं बन सकते हैं। क्योंकि वस्त्र हैं, भोजन है, शास्त्र है, मंदिर है-ये सब तो परिग्रह के साथ में जुड़े हुए हैं। अतः भगवान् महावीर ने कहा कि अगर तुम

अपरिग्रही नहीं बन सकते हो ठीक है, सम विभाग तो कर सकते हो। तुमने लिया है परिवार से, समाज से, राष्ट्र से, प्रकृति से, तुमने सारी दुनिया से जो लिया है उसके बदले उनको कुछ दे सकते हो तो दो तुमने मकान नहीं बनाया, तुमने अनाज नहीं उगाया, तुमने बहुत सारी चीजें नहीं बनाई हैं जिनका तुम उपयोग करते हो, तो ऐसी भावना रखो कि तुम्हारे पास जो साधन हैं उनका संविभाग करो तथा उन साधनों का सम्मान करना सीखों। उनका उपयोग करते हो तो दूसरों के लिए भी उपयोगी कैसे बन सकते हो उसके लिए प्रयत्न करो। तभी अपरिग्रह की साधना होगी, अन्यथा साधना शब्दों में ही रह जाएगी। जैन समाज ने जब सम्पत्ति अर्जित की है तो समय-समय पर उसका सदुपयोग भी किया है। इसी कारण से जैन धर्म की प्रभावना हो सकी है।

वीरायतन में भी लोगों के सहयोग के कारण सेवा को विस्तार मिला है, शिक्षा को विस्तार मिला है और उससे लोगों के संस्कारों में परिवर्तन आया है। लाखों लोग सम्पर्क में आए हैं, लाखों लोग चिकित्सा के माध्यम से सम्पर्क में आए हैं लेकिन मैंने किसी भी व्यक्ति का धर्म परिवर्तन नहीं किया है। मैंने सिर्फ संस्कार परिवर्तन किया है कि वे शुद्ध शाकाहारी बने, उन्हें किसी भी प्रकार की तकलीफ ना हो और वे किसी भी प्रकार की हिंसा ना करें।

अनेकान्त-

तीर्थकर महावीर का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है अनेकान्त जिसके अनुसार हम दुनिया की बहुत सारी सच्चाई को स्वीकार करते हैं, उसे मानते हैं, उसका सम्मान करते हैं। लेकिन जब हमें चलना होगा तो हमें एक ही रास्ता अपनाना होगा। सिद्धान्त में अनेकान्त हो सकता है पर व्यवहार में एकान्त ही होगा। हमें चलने के लिए 10 मार्ग पता है लेकिन जब हम चलेंगे तो हमें एक ही रास्ता अपनाना होगा। हम दो रास्तों पर एक साथ नहीं चल सकते हैं। तो चाहे हम जो भी रास्ता अपनाएं चाहे वह सेवा का हो, शिक्षा का हो या साधना का हो हम कोई भी एक मार्ग लेकर चलते हैं और दूसरे का सम्मान करते हैं। अनंत विश्व में हमारा जीवन बहुत छोटा-सा है और इस छोटे से जीवन में हमारा रास्ता भी बहुत छोटा-सा होगा, लेकिन दूसरों का अनादर करना अगर हम छोड़ दें तो दुनिया में जितनी भी घृणा युद्ध पनप रहे हैं वह खत्म हो सकते हैं।

भगवान् महावीर के इन तीन सिद्धान्तों को अगर हम अपने व्यवहार में रख सकेंगे तो विश्व में हम शांति ला सकेंगे। मेरा यह विश्वास है कि हम इसी से सारी दुनिया में मैत्री की भावना ला सकेंगे।

एक व्यक्ति की अपनी मर्यादा है, कार्य क्षमता है, साधनों की सीमा है इसलिए वह भावों से तो जुड़ सकता है पर कर्म से नहीं

जुड़ सकता। जितना हम कर सकते हैं उतना पुरुषार्थ हमें करना है। अतः मैं कहती हूँ जहाँ जिनालय वहाँ विद्यालय, वहाँ चिकित्सालय। जहाँ-जहाँ तीर्थकरों ने अपने उस दिव्य ज्ञान को बांटा है वहाँ-वहाँ हम विद्यालय बनाएं और चिकित्सालय बनाएं ताकि और हम भगवान महावीर की दिव्य वाणी को सार्थक करें और वहाँ पर रहनेवाले लोगों को शिक्षित करें, उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखें तथा उनके अहिंसक बनाए, उन्हें शाकाहारी बनाए, उनके संस्कारों का परिवर्तन करें एवं उन्हें एक अच्छा मनुष्य बनाएं।

मेरा यह अनुभव है कि ऐसी जगह जहाँ पर लोग रात में तो क्या दिन में भी जाते हुए डरते थे। जहाँ पर इतनी ज्यादा हिंसा थी, आज वह पूरा क्षेत्र एकदम अहिंसक बन चुका है और लोगों के व्यवहारों में और संस्कारों में इतना परिवर्तन आया है कि वे एक सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बिना धर्म परिवर्तन किए हुए भी भगवान महावीर की अहिंसा के मार्ग को वर्षा की बूँदों की तरह व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुँचाया जा सकता है। मुझे ऐसा लगता है कि हमने जो अमृत पिया है उसे लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। और तब हम उनके जीवन को साकार समृद्ध और खुशहाल बना सकेंगे। मैंने जो अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांतवाद को जीवन के व्यवहार में लाने की बात की है उससे जैन समाज के किसी भी

व्यक्ति को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हमें इन तीनों सिद्धांतों को रचनात्मक रूप देना है जो हमारे आचार में हो सकता है।

इसी तरह मैंने पालीताणा में भी शिक्षा और सेवा के माध्यम से लोगों के जीवन में परिवर्तन लाने की कोशिश की है। यहाँ पंडितों के लिए, और विद्वानों के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की जा रही है। यहाँ पर सर्वसाधारण बच्चे, ऐसे बच्चे जो कभी सोच नहीं सकते थे कि उन्हें स्कूल जाने का कभी मौका मिल सकेगा, वे बच्चे डोली वालों के बच्चे हैं, किसानों के बच्चे हैं, साधारण स्थिति परिवार के बच्चे हैं अन्य जाति के बच्चे हैं। बिना किसी धर्म जाति का भेद किए बिना यहाँ सब एक साथ पढ़ते हैं। यहाँ के स्कूल और अस्पताल की व्यवस्था इतनी सुन्दर है कि जो भी यहाँ आता है वह देखकर प्रसन्नता से भर उठता है। जैन समाज ने हजारों वर्षों से समाज के लिए बहुत अच्छे कार्य किए हैं और ऐसे ही कार्य आगे भगवान महावीर के नाम से हो तो यह एक गौरव की बात है। वीरायतन यह सब कार्य भगवान महावीर के नाम से करता है। वीरायतन देश-विदेश में पिछले 50 वर्षों से कार्य कर रहा है और इस कार्य में आप सबका भावपूर्ण सहयोग है जो जन-जन का कल्याण करते हुए लोगों के जीवन में परिवर्तन ला रहा है।



सम्मान सेवा का -आचार्य चन्दना

बात सन् 1986 की है। जब वीरायतन राजगृह में 'नेत्र ज्योति सेवा मंदिरम्' (आई हॉस्पिटल) की ओर जानेवाला मार्ग बन रहा था। भयंकर गर्मी के दिन थे। आदरणीय बाबा श्री नवलमल फिरोदियाजी स्वयं उस निर्मित होते मार्ग के किनारे कुर्सी पर बैठकर कार्य का निरीक्षण कर रहे थे। रोड़ सही बने, व्यवस्थित निर्माण हो इसके लिए वे सारी व्यवस्था पर पूर्ण निगरानी रख रहे थे। प्रतिदिन वे बिना थके उस धूल-धक्कड़ और धूप में बैठकर व्यवस्था देखते थे।

एक दिन मैंने कहा, "बाबा! इतनी गर्मी और ऐसी धूप में आप मत बैठिए। पास के इस मकान में बैठिए न।" यद्यपि बाबा ने मेरी बात का उत्तर मुस्कुराहट में दिया लेकिन इस मुस्कुराहट में पूर्ण दृढ़ता थी। मैंने अपनी भावना दोहराने का एक बार पुनः प्रयास किया। मैंने कहा, "आपने तो जीवन में कितने ही निर्माण कार्य किये हैं। बड़ी-बड़ी इन्डस्ट्रीज बनाई हैं। तब तो इस तरह निरीक्षण नहीं किया। और अब इतने छोटे-से रास्ते के लिए आप इतना कष्ट क्यों झेल रहे हो?

उनका जबाव सुनकर मैं निःशब्द खड़ी उन्हें देखती रह गयी। वे बोले, "ताई महाराज! यह कार्य मात्र एक रोड का ही नहीं है किन्तु इस कार्य का एक गहन महत्त्व है।" भावपूर्ण थे उनके शब्द। वे बोलते गये, "इस रोड पर अनगिनत वे बच्चे और वे बुजुर्ग मरीज चलेंगे जिनकी आंखें नहीं हैं। उन्हें इस रास्ते पर चलते हुए जरा-सी भी तकलीफ न होने पाये, अतः यह रोड अच्छा हो, व्यवस्थित हो, इस लिए मुझे पूरा ध्यान देना होगा। तो ताई महाराज! मुझे यहाँ बैठने दीजिए।" फिर मैं उन्हें कुछ नहीं कह पायी। जबतक वह रास्ता नहीं बना, बाबा हरदिन वहीं धूप में बैठते रहे।

रोड तो एक छोटी-सी घटना है। उन्होंने हर कार्य पूर्ण सावधानी से किया। वीरायतन के साध्वीसंघ के साथ एक मजबूत फौलादी स्तम्भ बनकर वीरायतन के हरकार्य को एवं वीरायतन के विचारों को सही तरीके से समाज तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

—मेरे देवदूत से



समाचार

वीरायतन मेरठ

राष्ट्रसंत पूज्य गुरुदेव उपाध्यायश्री अमरमुनिजी महाराज एवं पद्मश्री डॉ. आचार्य चन्दनाश्रीजी के आशीर्वाद से संस्थापित “वीरायतन मेरठ” जो वीरायतन का विश्व में 26 वाँ केन्द्र है। जहाँ सेवा सम्बन्धी अनेक कार्य समय-समय पर सम्पादित किये जाते हैं। हर माह भण्डरे (मुफ्त भोजन) की भी सेवा मेरठ के विभिन्न स्थानों पर आयोजित होती है। चिकित्सा सेवाएँ भी होती हैं। जिसमें अनेकों सद्गृहस्थ और सदसंस्थाएँ तन-मन-धन से सहयोग करती हैं।

इस बार श्रमण भगवान महावीर के 2550 वें निर्वाण कल्याणक के शुभ प्रसंग पर 26 सितम्बर 2022 को तृतीय “निःशुल्क मेगा नेत्र चिकित्सा शिविर” का कार्यक्रम गुरुखूब सत्संग भवन जैन नगर मेरठ में आचार्य श्री ताई माँ की कृपा से आयोजित किया गया है।



जिज्ञासा शिष्य की : प्रजा गुद्ध की

जिज्ञासा—

महापुरुषों की पुण्यभूमि तीर्थक्षेत्रों में प्रायः अधिक गरीबी देखी जाती है, क्या दान की प्रचलित परम्परा से इस प्रश्न का समाधान संभव है?

समाधान—

गरीबी का प्रश्न केवल तीर्थक्षेत्रों से ही सम्बन्धित नहीं है। गरीबी सारे देश के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है; जो पहले भी था और आज भी है। कहीं कम तो कहीं ज्यादा अनुपात में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है। परन्तु है यह देश की सर्वतः प्रसृत व्यापक समस्या। कुछ समय पूर्व देश की जितनी आबादी थी उसमें से केवल सात प्रतिशत लोग ही श्रम करते थे। उक्त स्थिति से स्पष्ट-रूपेण

प्रमाणित हो जाता है कि गरीबी का यह चक्र कब से चला आ रहा है और उसका मूल हेतु क्या है? जब तिरावें प्रतिशत आदमी काम करनेवाले होंगे तभी वस्तुतः गरीबी की समस्या का हल निकल सकेगा। उपभोग से अधिक श्रम ही श्री एवं समृद्धि का हेतु है।

श्रम से श्री—

गरीबी केवल अभाव है, उसे श्रम से ही दूर किया जा सकता है। मनुष्य की निष्ठामूलक कर्मचेतना ही उस अभाव को मिटा सकती हे बहुत बार मनुष्य के लिए अभाव चुनौती का काम करता है। यदि मानव उसके समक्ष दृढ़ता से खड़ा होकर कर्मक्षेत्र में जुझने के लिए कटिबद्ध हो जाता है, तो अभाव को समाप्त करने की दिशा में से ही समाधान मिल

सकता है।

किन्तु गरीबी अगर मनुष्य के मन में दीनता का रूप ले लेती है, तो जीवन की साहस मूलक कर्म-शक्ति को बर्बाद कर देती है। और यह दीनता कुछ समय बाद एक ऐसे कुसंस्कार को बद्धमूल कर देती है कि फिर यह दीनता मानव के समस्त कोश से तो क्या, कुबेर के कोश से भी मिट नहीं सकती। अतः याचना से, दान से अथवा अन्य किसी परकीय सहयोग की भीख से दीनता को दूर करने का विचार ही व्यर्थ है।

आवश्यक हैं श्रम निष्ठा—

श्रम की निष्ठा के अभाव में देश की कर्म-चेतना व्यापक रूप से विलुप्त होती जा रही है। आवश्यकताएँ फैलती जा रही हैं। पाने की इच्छा लंका की राक्षसी सुरसा का मुख बनती जा रही है। इसका समाधान श्रम से हो सकता है, पर श्रम नहीं करना चाहता है व्यक्ति। चाहिए सब कुछ, किन्तु उसके लिए करना कुछ नहीं है। ऐसी स्थिति में इधर-उधर मांगने के सिवा और याचना के अतिरिक्त कर्मशून्य लोगों के पास अभीष्ट पाने का अन्य उपाय ही क्या है? दूसरों से कुछ भी पाना हो तो उनके मन को तैयार करना पड़ेगा, इसके लिए उनके समक्ष रोना पड़ेगा, गिड़गिड़ाना पड़ेगा। स्वयं को आवश्यकता है श्रम तो निष्ठा की।



बुरी-से-बुरी दीन-हीन स्थिति में प्रदर्शित करना पड़ेगा। और इतने बड़े प्राणहीन श्रम के द्वारा जो यत् किंचित् प्राप्त होगा भी, तो उससे दीनता बढ़ेगी ही, कम नहीं होगी। एक भिखारी द्वार पर खड़ा होकर करुण स्वर में भीख के लिए कितनी बार आवाज देता है, पर उसे मिलता क्या है? वही जो उपभोग से बचा-खुचा है, जिसकी घर में आवश्यकता नहीं रह गयी है। इस तरह दान में प्राप्त वस्तु से किसी का क्या निर्माण हो सकता है? यह मनोवृत्ति राष्ट्रव्यापी बनती जा रही है। लेने की चर्चा सभी जगह है, श्रम से पाने की बात बहुत कम। इससे कर्तव्य की भावना कम हुई हैं। राष्ट्र की प्रगति के उपयोगी सही सूत्र लुप्त होते जा रहे हैं। और इस प्रकार व्यापक रूप से गीरबी के नाम पर दीनता का प्रदर्शन हो रहा है। अगर गरीबी

समाचार

पालीताणा - वीरायतन

सत्कार्य बच्चों में संस्कार बीज वपन के और पर्यावरण सुरक्षा के

हमारे बच्चे संस्कृत में उत्कृष्ट हैं।

हमें यह घोषणा करते हुए बहुत खुशी हो रही है कि तीर्थकर महावीर विद्या मंदिर के चार बच्चों ने पालीताणा में हुई संस्कृत प्रतियोगिता में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है। इस प्रतियोगिता में पालीताणा और उसके आसपास के सभी स्कूलों और कॉलेजों के छात्रों ने विभिन्न श्रेणियों में भाग लिया। तीर्थकर महावीर विद्या मंदिर के पांच बच्चों को भाग लेने के लिए चुना गया और उनमें से 4 को पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 13 साल के दर्शन परमार लिखने में प्रथम आए; 13 साल की विंशी अवादी पढ़ने में प्रथम आई; 15 साल की ध्रुवी बाघेला रचना में पहले स्थान पर रहीं; और 15 साल की प्रगति ने चित्रकला प्रतियोगिता में दूसरा स्थान हासिल किया बच्चों को संस्कृत से संबंधित कुछ आकर्षित करना था। पूज्य ताई माँ ने सभी बच्चों को बधाई दी और प्रत्येक को उपहार भेंट किया।

रक्षा बंधन—

तीर्थकर महावीर विद्या मंदिर पालीताणा, वीरायतन में सभी 350 छात्रों ने बड़े उत्साह और जोश के साथ रक्षा बंधन मनाया। सभी ने सुंदर कपड़े पहने और बड़ी नेत्र अस्पताल, वीरायतन पालीताणा की एक

मुस्कान के साथ, बालिकाओं ने बालकों को राखी बांधी और प्रत्येक बालक ने प्रत्येक बालिका को चॉकलेट भेंट की। पूज्य आचार्यश्री ताई माँ ने बच्चों से कहा कि राखी बांधना सिर्फ बाहरी क्रिया नहीं है बल्कि इसके पीछे गहरा अर्थ है। उन्होंने कहा कि यह सिर्फ एक-दूसरे की रक्षा, सम्मान और प्यार करने के बारे में ही नहीं बल्कि इन भावनाओं को पूरी दुनिया में फैलाने के लिए भी है। और बुद्धिमान इन बच्चों ने आत्मविश्वास के साथ हर उस चीज का उल्लेख किया जिसकी वे रक्षा करना चाहते हैं। पूज्य ताई माँ की उपस्थिति में, उन्होंने संकल्प लिया; कि वे हमेशा एक-दूसरे की, अपने माता-पिता और पूरे परिवार की, गाय आदि जानवरों की, पक्षियों की तथा पेड़-पौधों और पर्यावरण सहित प्रकृति की देखभाल करेंगे।

इतनी सकारात्मक ऊर्जा के साथ रक्षा बंधन को मनाने का इतनी शानदार पद्धति सचमुच प्रेरणास्पद रही।

—अल्पाकच्छी अंग्रेजी शिक्षिका

पालीताणा में समागत यात्री ने श्री आदिनाथ नेत्रालय देखकर कहा—

श्री आदिनाथ नेत्रालय, अति आधुनिक नेत्र अस्पताल, वीरायतन पालीताणा की एक

पहल है जहाँ उत्कृष्ट सेवा का कार्य होता है। हाल की एक यात्रा पर हम यहाँ की कार्य प्रणाली से दंग रह गए; आउट पेशेंट किलनिक में पहली बार देखे जाने से लेकर इलाज और बाद की देखभाल तक रोगियों का निर्बाध उपचार प्राप्त हो रहा है। स्थान की साफ-सफाई और सभी कर्मचारियों द्वारा दिया गया स्वागत काबिले तारीफ है।

यह सुनकर बहुत अच्छा लगा कि सभी स्टाफ सदस्यों को या तो इन-हाउस या हैदराबाद में एल.वी. प्रसाद आई इंस्टीट्यूट में प्रशिक्षित किया जाता है ताकि सभी रोगियों को उच्च गुणवत्ता वाली देखभाल दी जा सके। मरीजों को सब्सिडी वाले उपचार प्राप्त होते हैं जिनमें या तो चिकित्सा या शल्य चिकित्सा उपचार या चश्मा प्राप्त करना शामिल है। इस ग्रामीण अस्पताल में विशेष रेटिना उपचार भी उपलब्ध हैं। सबसे सराहनीय बात यह है कि अस्पताल पेपरलेस है और कम्प्यूटर सिस्टम द्वारा ऑडिट ट्रैल के लिए दर्ज की गई जानकारी पूर्णतः विश्वसनीय है। जैसे कि यह सब कुछ रिकॉर्ड करता है, जब रोगी पहली बार अस्पताल आया था, डॉक्टरों द्वारा देखे जाने से पहले उन्हें कितना इंतजार करना पड़ा था, स्वयं उपचार प्राप्त करने और देखभाल के बाद प्राप्त किया। सर्जिकल हस्तक्षेप करने वाले डॉक्टरों के वीडियो को किलनिकल ऑडिट उद्देश्यों के लिए भी संग्रहीत किया जाता है।

पूज्य ताई माँ की दृष्टि और आशीर्वाद और साध्वी संघमित्राजी तथा साध्वी चेतनाजी की कड़ी मेहनत से पालीताण और आसपास के क्षेत्रों के लोगों को उत्कृष्ट नेत्र देखभाल उपचार प्राप्त हो रहा है। निःशुल्क नेत्र जाँच शिविर

श्री आदिनाथ नेत्रालय ने सर मानसिंह जी सरकारी अस्पताल के सहयोग से पालीताण एवं तलाजा सेंटर में दो निःशुल्क नेत्र जाँच शिविरों का आयोजन किया, जिसमें 111+89 कुल 200 रोगियों को देखा गया, जिन्हें मोतियाबिंद, ग्लूकोमा, आंखों में संक्रमण आदि सहित विभिन्न नेत्र समस्याओं का निदान किया गया। आवश्यकता के अनुसार दवाएँ मुफ्त दी गई। श्री आदिनाथ नेत्रालय में किए जानेवाले ऑपरेशन्स के लिए 36 रोगियों की पहचान की गई है। इन मरीजों का आगे का प्रबंधन भी मुफ्त होगा।

इस तरह के नेत्र शिविरों को नियमित रूप से आयोजित करने की योजना है, ताकि अधिक से अधिक रोगियों तक सेवाओं को पहुँचाया जा सके।

—सोहम् कोठारी
प्रबंधक

शिक्षा जीवन की तैयारी का शिक्षण काल है।



Tirthankar Mahavir Vidya Mandir

Pawapuri- Nalanda



IGF - WORLD GAMES
 May 5-8' 2022 at GOA, India
 Organised By : International Federation of United World






NAME- ADITYA PRATAP SINGH
EVENT- KARATE
(SUB, JR. BOYS 11-12 yrs KUMITE)
POSITION- IIIrd (BRONZE)
COUNTRY- INDIA

Nalanda District Sub-Junior/Junior/Senior Wushu Championship- 2021
जिला प्रशिक्षण, नालंदा
नाम- अदित्य प्रताप सिंह
आयोजित U/14-40kg
श्रणी- प्रथम

United Karate Foundation India (KYU) Gradation
Name- Aditya Pratap Singh
Passed- 7th, Wear- Green



Fudokan Karate Association of India (KYU) Gradation
Name- Aditya Pratap Singh
Passed- 9th, Wear- Yellow

12th Bihar State WUSHU Championship- 2022
Sub-Junior, Junior & Senior
Name- Aditya Pratap
Level- Gold, Organized- U/32kg

Fudokan Karate Association of India (KYU) Gradation
Name- Aditya Pratap Singh
Passed- 8th, Wear- Orange

Lachhuar - Jamui

ACHIEVEMENTS REPORTS

**CLASS 10th AISSE 2021
RESULT 100%**

Total No. of Registered Student: 71

Above 90% Marks Secured: 5
Above 80% Marks Secured: 11
Above 70% Marks Secured: 20
Above 60% Marks Secured: 20
Above 50% Marks Secured: 15

Shri Brahmi Kala Mandiram

BKM Visitors from April to September- 2022

- No. of Visitors - 74555
- No. of School - 68





Netra Jyoti Seva Mandiram

Rajgir - Nalanda, Bihar

ACHIEVEMENTS REPORTS FROM APRIL TO SEPTEMBER- 2022

- | | |
|--------------------|--------------------|
| • Eye OPD - 28,398 | • Dental - 5856 |
| • Eye OT - 2436 | • Pathology - 9891 |
| • Retina - 1391 | • General - 25 |



हम एक होकर काम करें

हो सकता है हमारी परम्परागत मान्यताओं में अन्तर हो, वैचारिक विभिन्नताएँ हो किन्तु जहाँ तक पथु संरक्षण का प्रश्न है, पयविरण सुरक्षा की बात हो, तीर्थकर और तीर्थोद्घार का मुद्दा हो या शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा का विचार हो, इसमें हम सब एक हैं, एकमत है।

यह समय की पुकार है कि हम समग्र जैन समाज एक सहमति से देश की मूलभूत समस्याओं के समाधान हेतु मिलकर काम करें।

- आचार्य चन्दना



देश-विदेश में कटीब छ: हजार जैन मंदिर हैं। इन मंदिरों में पूजा करनेवाले पुजारियों की संख्या लगभग दस हजार है। मंदिर में नित्य पूजा और साथ ही मंदिर की देखभाल में पुजारियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

आचार्यश्री चन्दनाजी पूज्य ताई माँ ने निर्णय लिया है कि पुजारियों के इस कार्य को पुनीत सेवा में लगातारित किया जाए। अतः वीरायतन पलिताण में "पुजारी प्रशिक्षण केंद्र" का निर्माण करना चाहिए। जिससे पुजारी पूजाविधि में अन्तर्निहित अर्थों को आत्मसात करते हुए पूजा संपन्न कर सकेंगे और उन्हें शुद्ध, स्पष्ट उच्चारण एवं भावपूर्ण विधि का ज्ञान कराया जाना चाहिए। साथ-ही जैन तत्त्वज्ञान, जैन दर्शन, जैन पर्व तथा जैन जीवन पद्धति का भी ज्ञान कराया जाना चाहिए। इस केंद्र में देश-विदेश के सभी प्रान्त, पंथ, परम्परा के पुजारी भाग ले सकेंगे। उन्हें अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार संस्कार देने का प्रयत्न किया जायेगा।

इस कार्यक्रम की सम्पूर्ण रूपरेखा शीघ्र ही आपकी सेवा में प्रेषित की जाएगी।

इस विषय में आपके विचार प्रेषित करने के लिए निवेदन है।

निवेदक – वीरायतन परिवार

कब ?

- निश्चित ही सत्य की प्राप्ति होती है, **लेकिन कब ?** जब शब्द की पकड़ छूट जाती है।
- निश्चित ही धर्म की प्राप्ति होती है, **लेकिन कब ?** जब सम्प्रदाय की पकड़ छूट जाती है।
- निश्चित ही स्वयं का साक्षात् होता है, **लेकिन कब ?** जब दूसरों का अनुगमन छुट जाता है।

श्रद्धांजलि

श्री पवनजी जैन दिल्ली ने 9 जनवरी 2022 को प्रभु महावीर की पवित्र निर्वाणभूमि पावापुरी में अंतिम सांस ली। वे विगत 4 वर्षों से लगातार अपनी धर्मपत्नी कृष्णाजी के साथ वीरायतन संस्थान में सेवारत थे। उन्होंने कभी भी न परिवार की परवाह की और न किसी व्यक्ति की कोई परवाह की कि कौन उनके लिए क्या सोचता है या क्या बोलता है। वे तन से, मन से और धन से निरन्तर अपने समर्पण भाव से सेवा में लगे रहे। क्योंकि उन्हें गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनिजी महाराज एवं श्रद्धेय आचार्य श्री चन्दनाजी पूज्य ताई मां के प्रति श्रद्धाभक्ति का भाव अपने माता-पिता से प्राप्त था।

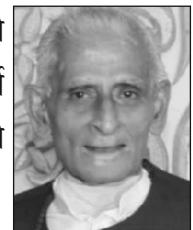


श्री पवनजी जैन- दिल्ली

वे दिल्ली में सफल बिजनेसमेन थे। परिवार में पिता के कर्तव्यों को पूर्ण करने के बाद वे वीरायतन राजगृह में आगये। यहाँ उन्हें जो जिम्मेदारी मिली उसे बखूबी निभाया। उनके इस समर्पणभावों के प्रति नतमस्तक उनके आज्ञाकारी एकमेव प्रियपुत्र श्री अनुराग जैन कहते हैं कि पूरे परिवार के लिए पूज्य पिताजी प्रेरणा और आदर्श स्वरूप बन गये हैं। हम उनकी सद्गुणों की सुवास को फैलाते हुए उनके पथपर चलने का प्रयास करेंगे। प्रभु चरणों में प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा प्रकाश की ओर गतिमान रहे।

-अनुराग आरती जैन

पुण्यश्लोक पद्मसिंहजी बैद का 26 जनवरी 2022 को परलोक गमन हो गया। उनका सारा जीवन सादगी एवं सिद्धान्तपूर्ण था। वे एक कर्मठ कार्यकर्ता थे। श्री दादावाड़ी जीर्णोद्धर कमिटी के संरक्षक प्रारम्भ से रहकर जो उन्होंने सेवाएँ अर्पित की है सदैव हमारी स्मृति में बनी रहेंगी।



अजीमगंज से परिवार सहित पटना आये एवं एक छोटी-सी शुरूआत करके इन्द्रपुरी प्रतिष्ठान न्यूमार्केट बनाया जो आज पूरे पटना शहर में प्रसिद्ध हैं। इनके पुत्र राजकुमार वैद एवं पौत्र अंशु वैद इसका कुशल संचालन कर रहे हैं। पुत्र, पौत्र एवं पुत्रवधुओं ने अंतिम समय तक उनकी खुब सेवा की।

शासनदेव दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

-प्रदीप जैन कोठारी

अध्यक्ष जैनसंघ, एवं सचीव दादावाड़ी पटना

A Grand Celebration at Veerayatan- Kutch

To Commemorate 50 Years of Veerayatan

"GOLDEN JUBILEE"

